भाद्र शुक्ल २, बुधवार, दिनांक - २४-०८-१९६०
ऋषभजिन स्तोत्र, गाथा - १६ से २०, प्रवचन-६

इस पद्मनन्दि पंचविंशति में ऋषभदेव भगवान के स्तोत्र का अधिकार है। जिसे आत्मा के धर्म की रुचि और दृष्टि हुई, उसे भगवान के प्रति भक्ति आये बिना नहीं रहती। समझ में आया? ऐसा व्यवहार (आता है)। आत्मा परमानन्द और वीतरागी अविकारी स्वभाव है और वास्तव में विकार तथा निमित्त का निषेध होकर स्वभाव का भान हुआ, उसे व्यवहार से स्वभाव होता है, ऐसी दृष्टि नहीं होती, तथापि व्यवहार बीच में निश्चय आत्मा का ज्ञाता का भान होने पर, पूर्णपरमात्मा की दशा जिसे प्रगट हुई अथवा ऐसे भगवान की प्रतिमा / मूर्ति के प्रति भक्ति और आह्लाद आये बिना नहीं रहता, क्योंकि जहाँ नय प्रगट हुए, प्रमाणज्ञान प्रगट हुआ, स्वभाव का भान होकर प्रमाण अर्थात् द्रव्य और वर्तमान पर्याय दोनों का ज्ञान हुआ, उस प्रमाण का भाग जो नय, ऐसा एक व्यवहारनय है, उसमें भगवान की भक्ति का या निक्षेप परमात्मा की मूर्ति में हो, ऐसा व्यवहारनय विषयी जहाँ प्रगट हुआ, वहाँ उसे ऐसा विषय आये बिना रहता नहीं। समझ में आया?

शास्त्र में तो ऐसा लेख भी आता है। मुनि आदि ध्यान में बैठे हों। यह पार्श्वनाथ का आता है न? भाई! उसका विमान निकला, विमान अटक गया। वन्दन न करे, आदर न करे और रुक गया। धर्मात्मा बीच में ध्यान में विराजते हों और उनके ऊपर से विमान निकले और उनका विनय उसके हृदय में न हो (तो वह) अटक गया, विमान अटक गया। अटकने पर उसे उल्टा वैर उल्लसित हुआ। यह कौन है? मैं ऐसे चला जा रहा हूँ और मेरे विमान को अटकाता है। उन्होंने-भगवान ने कहीं अटकाया नहीं परन्तु कुदरत के नियम में (ऐसा है कि) जहाँ धर्मी जीव है, उनके सिर के ऊपर चलना—मस्तक के ऊपर चलना ऐसा उसे नहीं हो सकता। ऐसा होने से विमान अटक गया, इसलिए उनका विरोध निकाला। यह कौन ऊंघता है... झलझलाहट... भगवान के सिर पर डाला, पत्थर डाले, अग्नियाँ डालीं। भगवान तो अपने ध्यान में थे। केवलज्ञान को प्राप्त नहीं हुए थे। पार्श्वनाथ भगवान। फिर तो धरणेन्द्र आदि ने आकर उसे हटाया।

उसी प्रकार जिसे आत्मा के धर्म का भान होता है, उसे प्रतिमा, भगवान का

विरोध उसकी दृष्टि में नहीं होता और इसलिए उसकी दृष्टि में भक्ति का उल्लास आये बिना नहीं रहता। ऐसे धर्मात्मा मुनि हों या भगवान की प्रतिमा, मन्दिर जहाँ हों, वहाँ वह निकले और उसे वन्दन का भाव न हो और वन्दन न करे तो वह दृष्टि मिथ्या है। समझ में आया? भगवानजीभाई! यह कहाँ से निकाला वापस व्यवहार? ...चन्दजी! पूरी जिन्दगी जिसे भगवान की प्रतिमा और मूर्ति (का) प्रेम आवे ही नहीं और भक्ति का भाव आवे ही नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसकी दृष्टि सच्ची नहीं है। समझ में आया इसमें? नरभेरामभाई! यह दान का अधिकार नहीं, हों! यह अधिकार भक्ति का है। इतना अच्छा है, कहते हैं। यहाँ तो दान, अभी तो यह भक्ति का जो वस्तु का स्वरूप है...

मुमुक्षु : दोनों में भूले हैं, ऐसा कहते हैं यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक कहते हैं यह।

इस प्रकार, आहाहा! देखो! यह मुनि है। भावलिंगी सन्त हैं। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं और ऐसे भगवान को याद करते हैं। पूरा उनका जीवनचरित्र ऋषभदेव भगवान सर्वार्थसिद्धि में से आये, तब से लेकर मोक्ष पधारेंगे, तब तक सब स्तुति करेंगे। समझ में आया? तुम्हारे क्या कहलाता है? यह फिल्म बनाते हैं न?

मुमुक्षु : आज ही दिखाने का विचार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आज दिखाने का विचार है। रात्रि में उस चर्चा का क्या होगा? समझ में आया?

फिल्म में जैसे इसे सब रूप बताते हैं, वैसे अपने हृदयचित्र में भगवान यहाँ थे। अरे! प्रभु! आप ऋषभदेव भगवान सर्वार्थसिद्धि में थे न प्रभु! वहाँ की शोभा तो आप थे तो थी, हों! आहाहा! वहाँ से यहाँ आये। इस पृथ्वी पर नाभिराजा की (रानी के) गर्भ से अवतरित हुए, तब पृथ्वी को वसुमति नाम प्राप्त हुआ। माता के गर्भ में आये (तो) माता दूसरी स्त्रियों में धन्य हो गयी। वहाँ से आपको जन्माभिषेक (के लिये) मेरुपर्वत पर ले गये, प्रभु! वह जन्म अभिषेक करते हुए उस मेरुपर्वत ने तीर्थरूप को धारण किया। ओहोहो! पहले से उठाया है न। और उसका पानी उछला तो देव ऐसे बिखरकर आकाश में व्याप्त हो गये। ओहोहो!

भगवान! और वहाँ से जब आपको वैराग्य का प्रसंग बना, दीक्षा अंगीकार करने का प्रसंग आ गया न? अर्थात् कि अंजना, अंजना क्या नीलांजना देवी ऐसे नृत्य करती थी। ऐसे एक के बाद एक उतारा है। परमात्मा का पूरा जीवन हृदय में चित्रित हो गया है। यहाँ पूछते हैं कि देखो! उसे अन्त में क्या था इसमें? भगवान कहाँ से आये? भगवान कौन थे? यह कहे अपने को बहुत कुछ याद नहीं। लड़का कब जन्मा, उसकी जन्माक्षरी हमने लिखी है। भगवानजीभाई! नरभेरामभाई! समझ में आया? उसकी जन्माक्षरी लिखकर रखी है। ब्राह्मण को बुलाया था।

भगवान परमात्मा अरिहन्त सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ, जिन्हें एक समय में तीन काल -तीन लोक का ज्ञान ऐसे अरिहन्त कहाँ से आये? क्या हुआ? कैसे उनका जन्माभिषेक इन्द्रों ने किया? इन्द्र ऐसे नाच उठे। ओहोहो! केवलचन्दभाई! तथापि उनकी दृष्टि में यह राग वह अन्तर साधन का कारण है- ऐसा नहीं है। आहाहा! इस दुनिया को दिक्कत यह है न कि व्यवहार, वह निश्चय का कारण है। उस व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है। भगवान का मार्ग व्यवहार से अधिक मुख्य है। बात एकदम दृष्टि विपरीत है। समझ में आया? भगवानजीभाई! यह तो दोनों चलते हैं। दो नय है न?

इसलिए यहाँ जब भक्ति के विषय का वर्णन, पूजा, दान आदि का (वर्णन) चले तो भगवान में अर्पित हो जाए। इन्द्र आकर नाचे। तथापि वह देह की क्रिया तो देह के क्रम काल में होती है। उसका कहीं आत्मा कर्ता नहीं है। परन्तु उस समय राग आया है उसे वे धर्म के साधनरूप से, उपचाररूप से, आरोपरूप से कहते हैं। वह वास्तविक साधन नहीं है। अन्तर स्वभाव की एकाग्रता, वह मेरा साधन है। उसमें राग की मन्दता को निमित्तरूप से कहने में आता है। निमित्तरूप से अर्थात् कि वह है तो यह है, ऐसा नहीं। उससे यह होता है, ऐसा नहीं। परन्तु ऐसी भूमिका आये बिना नहीं रहती। क्यों, धन्नालालजी! भारी विवाद उठावे जगत, देखो!

यहाँ अब आचार्य (ने) कहाँ लिया? नीलांजना को देखकर वैराग्य हुआ। वह तो अपना काल वैराग्य (का) था। अब जब दीक्षा अंगीकार की। भगवान ने दीक्षा ली। ऋषभदेव भगवान आद्य तीर्थंकर इस भरतक्षेत्र में (हुए), तब प्रभु! यह पृथ्वी आपके विरह से रुदन करती है। यह श्लोक कहते हैं। बोलो। १६वाँ है न।

गाथा १६

वेरग्गदिणे सहसा वसुहा जुण्णं तिणं व जं मुक्का।
देव तए सा अज्ज वि विलवइ सरिजलरवा वरई।।१६।।

अर्थ – हे जिनेश! हे प्रभो! जिस दिन आपको वैराग्य हुआ था, उस दिन जो आपने यह पृथ्वी जीर्ण तृण के समान छोड़ दी थी, अतः तब से यह दीन पृथ्वी, इस समय भी नदी के ब्याज से (बहाने) विलाप कर रही है।

भावार्थ – जिस समय नदी में जल का प्रवाह आता है, उस समय नदी जो कल–कल शब्द करती है, उसको अनुलक्ष्य कर ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे प्रभो! यह नदी जो कल–कल शब्द कर रही है, यह इसका कल–कल शब्द नहीं है किन्तु यह कल–कल शब्द इस पृथ्वी के विलाप का शब्द है क्योंकि जिस समय आपको वैराग्य हुआ था, उस समय आपने इस बेचारी पृथ्वी को सड़े तृण के समान छोड़ दिया था और आप इसके नाथ थे, इसलिए आपके द्वारा ऐसा अपमान पाकर यह विलाप कर रही है और कोई भी कारण नहीं।

गाथा - १६ पर प्रवचन

वेरग्गदिणे सहसा वसुहा जुण्णं तिणं व जं मुक्का।
देव तए सा अज्ज वि विलवइ सरिजलरवा वरई।।१६।।

हे **जिनेश! हे प्रभो! हे देव! जिस दिन आपको वैराग्य हुआ था,...** आहाहा! देखो! वैराग्य को स्मरण करते हैं। हे नाथ! आपने सब पदार्थ स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, भरत जैसे पुत्र, बाहुबली जैसे उनके (भगवान के) पुत्र–पुत्रियाँ, बड़ा परिवार, अनेक हजार रानियाँ। वैराग्य–वैराग्य, उदास–उदास। उस वैराग्य के काल में, प्रभु! उस **दिन जो आपने यह पृथ्वी जीर्ण तृण के समान छोड़ दी थी,...** क्या कहते हैं? सड़ा हुआ तिनका जैसे छूटे। जैसे नाक का मैल हाथ में आकर छूटे, वैसे आपने इस पृथ्वी की ममता त्याग दी।

ऐसा कहकर कहते हैं कि प्रभु! आत्मा अपने ज्ञानानन्द में लपेट होता है, एकाकार होता है, इससे इस राग के... जिन्हें अपने व्यवहाररूप से माना था, जिनकी ममता में रहे थे, उन्हें एक क्षण में रोते छोड़ दिये। अब हम हमारे स्वरूप का साधन करेंगे। पूर्ण प्राप्ति के लिये यह अवतार है। हमारा यह पूर्ण प्राप्ति, परमानन्द की प्राप्ति का यह अवतार है। इस शरीर के बाद दूसरा शरीर हमारे नहीं है। इन्द्रों ने आकर हमारा जन्माभिषेक किया। अब हमको दीक्षा का काल आया है। वैराग्य होकर अब हम चारित्र धारण करेंगे। ऐसा कहकर मुनि महाराज भगवान की स्तुति करते हुए अपने को चारित्र है, उसकी विशेष-विशेष प्रतिष्ठा करते हैं। समझ में आया?

इस प्रकार जो तीन ज्ञान तो लेकर आये हैं और दीक्षा अंगीकार करने को तैयार हुए हैं, उस चारित्र बिना उनको भी मुक्ति नहीं हो सकती। परन्तु कौन सा चारित्र? लोग कहे, देखो! इसके बिना चारित्र नहीं। यह हुआ... यह हुआ... अभी पढ़ा था न कुछ भाई ने। देखो! आचार्य हुए। देखो! ... पड़े नहीं। कितने ही हमारे मुमुक्षु बन्धु इस व्रत, तप को भार कहते हैं। अरे! भगवान! चैतन्य शुद्ध चिदानन्द की जहाँ सहज स्वभाव सरल सुलभ ऐसी दृष्टि और स्थिरता हुई नहीं, वहाँ उसके तप और क्लेश सब भार आचार्य ने कहा है। समझ में आया?

आचार्य महाराज कहते हैं कि तू उस तप का भार वहन करता है, भाई! मुनि जंगल में (रहकर कहते हैं)। पंच महाव्रत का राग, हजारों रानियों का त्याग और महीने-महीने के अपवास, छह-छह महीने के अपवास। आचार्य कहते हैं कि क्लेश और भार वहन करता है, हों! क्यों? वह तो राग की मन्दता का क्लेश है। वह भार है, बोझा है; धर्म नहीं। आहाहा! धर्म तो ऐसे चारित्र, ऐसा वैराग्य... वैराग्य। धर्म दुःखदायक नहीं है कि कष्ट सहन करना पड़े, बहुत दुःख सहन करे, उसे चारित्र हो और उसे धर्म हो, ऐसा है नहीं। ऐसा है या नहीं? ...चन्दजी! यह दुनिया ऐसा कहती है, बहुत सहन करना पड़ता है। करके तो देखो तपस्या, करके तो देखो अपवास। अब धूल तेरे (अपवास), अभव्य भी ऐसा अनन्त बार करता है।

आचार्य तो कहते हैं... भाई! एक लेख आया है। धर्म का भार। ऐसा करके जैन गजट में लेख दिया है। पढ़ते थे... ऐसा कि यह सब हमारे मुमुक्षु इसमें से कुछ समझेंगे।

ऐसा कि यह सब भार है व्रत, तप, अमुक का। परन्तु उसमें आचार्य कहते हैं कि, बापू! तेरे आत्मदर्शन सहजस्वरूप... अविकारी, अनाकुल चैतन्य की दृष्टि और उसे एकाकार किये बिना वह राग और कषाय की मन्दता और शरीर की नग्नता को निभाना, वह भार है। समझ में आया? अन्दर बोझा है। आहाहा! यह कैसे निभेगा मृत्यु तक? अन्दर राग ही स्वयं भार है, बोझा है। कहो, समझ में आया? ऐसा रागरहित चैतन्य की दृष्टि हुई, तब स्वयं चारित्रवन्त मुनि तो भावलिंगी सन्त नग्न दिगम्बर हैं।

जितने जैनदर्शन में सच्चे साधु-सन्त होते हैं, वे सब दिगम्बर ही होते हैं। आत्मा की अन्तर्दृष्टि हुई और पश्चात् तीन कषाय का नाश हो, उनकी दशा व्यवहार से बाह्य शरीर की अत्यन्त नग्न ही हो जाती है। उन्हें वस्त्र का धागा नहीं रहता। ऐसी सहजदशा बाह्य में नग्न, अभ्यन्तर में अट्ठाईस मूलगुण राग और अन्तर में आत्मस्वभाव स्वरूप की, तीन कषाय के नाश की अनाकुलदशा का आनन्द, उसे साधु और उसे जैन के पंच महाव्रतधारी कहा जाता है। समझ में आया? दूसरे को साधुरूप से मानना, मनवाना, मानते हुए को भला जानना, यह सब मिथ्यादर्शन के पोषक हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! **उस दिन जो आपने यह पृथ्वी जीर्ण तृण के समान...** जीर्ण तिनका, ऐसा। सड़ा हुआ तिनका छूटने पर ममता रहती होगी? कि अरे! यह सड़ा हुआ तिनका कचरे में क्यों बाहर डाल दिया खेत में? ऐसी पूरी पृथ्वी को, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार हमें रागभाव था, इसलिए उसमें हमारा लक्ष्य जाता था। हम हमारे स्वभाव की एकाग्रता के पूर्ण साधन के लिये निकलते हैं। हम वनवास में रहेंगे। वैराग्य हुआ।

पृथ्वी जीर्ण तृण के समान छोड़ दी थी, अतः तब से यह दीन पृथ्वी, इस समय भी नदी के ब्याज से (बहाने) विलाप कर रही है। अपने सवेरे नहीं सुनते थे कहीं वह विलाप? ऐसा कुछ है। पानी बहता है, कल... कल... कल... होता था। ... उस समय यह याद किया था नहीं? कोई कहे कि कल आयेगा यह। धीरुभाई ने न? क्या कहते थे? महाराज! आप तो पृथ्वी के स्वामी नृपति थे। नृ—पति, मनुष्य के पति, पृथ्वीपति। पत्नियों के पति, भगवान सबको तृणवत् जानकर आत्मा के अन्तर वैराग्य साधन में जिये। यह पृथ्वी नदी के बहाने विलाप करती है। क्या कहा इसमें? नरभेरामभाई! क्या कहा?

उस नदी में खलखलाहट नहीं होती ? खलखलाहट होती है न ऐसी ? आवाज होती है न आवाज ? खलबल हो वहाँ कल... कल... कल... कल... कल... कल (आवाज होती है)। उसे देखकर भी आचार्य महाराज को प्रभु ने यह पृथ्वी का त्याग किया न, (इसलिए) यह पृथ्वी नदी के पानी के बहाने कल... कल... विलाप कर रही है। समझ में आया ? हमें छोड़ दिया। हमें सड़े हुए तिनके की भाँति छोड़ा। हमें मेरा करके भगवान ने पहले पोषण किया था। (यद्यपि) उन्होंने मेरा करके पोषण नहीं किया था, परन्तु वे तो ऐसा माने न। वे सब राजा। भगवान ने दीक्षा ली। चार हजार राजा साथ में थे। बहुत समर्थ पुरुष। उस समय में इस चौबीसी के आदिपुरुष अर्थात् महासमर्थ (थे)। पश्चात् दूसरे हजारों राजा खम्मा... अन्नदाता (करते थे)। वे खड़े हों तो (ये राजा लोग) खड़े हों, खाने के समय खायें, पहले खाने को उठे नहीं। उनकी व्यवहार सज्जनता की मर्यादा, जिसे सँभालने में। खड़े हों तो खड़े हों। वे खड़े हों और स्वयं बैठे रहें, ऐसा नहीं होता। ऐसी सँभाल जिनकी। भगवान ने दीक्षा ली। हजारों राजा (दीक्षा लेकर चल निकले)। आहाहा! भगवान को त्याग हो और अब अपने को घर में (नहीं रहा जाएगा)। देखादेखी, देखादेखी (दीक्षा ले ली)। वजुभाई! क्या ? इन्होंने छोड़ा, लाओ न हम भी छोड़ दें। यह दीक्षा ले, लाओ न हम भी दीक्षा लें। इनकी शोभायात्रा बड़ी होती है, सफल एक शोभायात्रा ... चलो न दीक्षा का पालन करेंगे बाद में। पालना था कहाँ, वहाँ धूलधाणी अज्ञानदशा है। किसे कहना दीक्षा और किसे कहना श्रद्धा, अभी इसकी तुझे खबर नहीं है।

हजारों राजाओं ने (दीक्षा अंगीकार की)। चार हजार राजा। देखादेखी (दीक्षा अंगीकार) की। जहाँ अवसर आया। कहावत है न ? 'भूखे मरते भाग गया।' कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? साधु चेला बहुत भूखे मरते भाग गया। आती है न भाषा। उन भगवान के (साथ में निकले हुए) चार हजार (राजा) धीरे-धीरे निकलते गये। चले गये। यह तो गजब... कितने दिन अपने सहन करना ? पन्द्रह दिन, महीना, दो महीना यह हटते नहीं। कोई पन्द्रह दिन भगे, कोई महीने में भगे। यह तो छह महीने तक ध्यान में खड़े रहे। परन्तु यह क्या अपने ? अब इनसे पहले इनको पूछे बिना खाया कैसे जाए ? इन्हें पूछे बिना घर कैसे जाया जाए ? साथ में नग्न। धीरे-धीरे चारों हजार राजा रवाना हो गये। खोटे देखा-देखीवाले कब तक टिकते होंगे ? समझ में आया ? वजुभाई!

इसी प्रकार जिसे आत्मा क्या, धर्म क्या, व्यवहार क्या, निश्चय क्या, निमित्त क्या, उपादान क्या—इसकी खबर नहीं और इस खबर के बिना वाडा में आकर भर जायें, वे कहाँ तक टिकते होंगे? वे टिक नहीं सकेंगे। चलो वहाँ। परन्तु क्या है वहाँ? यह चीज़ क्या है आत्मा? विकार क्या, पर्याय क्या, गुण क्या, द्रव्य क्या, संयोग में उस-उस प्रकार की निर्मलता पर्याय के काल में उसे उचित निमित्त कैसा होता है... समझ में आया? ऐसी जिसे खबर नहीं, ऐसा विवेक जिसे नहीं, वह धर्म के श्रवण में भी टिक नहीं सकेगा। टिक नहीं सकेगा, भगेगा बाबा होकर जाओ। भागो भाई। इसमें तो कुछ दूसरा है। इसमें कुछ अपने को समझ में नहीं आता।

आचार्य महाराज (कहते हैं), प्रभु! आपके विरह में पृथ्वियाँ रोती हैं। आहाहा! समझ में आया? उसे हो। हमारे क्या? उसकी दीनता के कारण कहीं हमें दीनता नहीं है। हम तो प्रभुता के साधन में चढ़े हैं। हमने छोड़ा भी नहीं और रखा भी नहीं। समझ में आया? किसे कौन छोड़े? कौन किसे रखे? वह चीज़ कहाँ इसमें थी? हमें जरा राग था, इसलिए उसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का व्यवहार लागू पड़ता। हमें राग गया, उस चीज़ के साथ हमारा सम्बन्ध टूटा। वह रोवे तो हमारे कुछ है नहीं। इसी प्रकार यहाँ आचार्य कहते हैं कि दुनिया हमारे आत्मधर्म की चारित्रदशा के वर्णन में न समझे और नग्न देखकर दुनिया प्रतिकूल हो। वह रोवे तो उसके घर में। हमारे कुछ है नहीं। समझ में आया?

जिस समय नदी में जल का प्रवाह आता है, उस समय नदी जो कल-कल शब्द करती है, उसको अनुलक्ष्य कर... उसे अनुलक्ष्य कर **ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे प्रभो! यह नदी जो कल-कल शब्द कर रही है, यह इसका कल-कल शब्द नहीं है किन्तु यह कल-कल शब्द इस पृथ्वी के विलाप का शब्द है...** कल... कल रव है। रव—आवाज। कल... कल—रव आवाज होती है, ऐसे कल... कल... कल... कलकलाहट कर छोड़े। अरेरे! प्रभु! हमको छोड़कर चले गये? पृथ्वी कल... कल... करती है, हों! उस नदी के बहाने। आहाहा! आँसू बहाती है। आँसू। विलाप करे। हमें कुछ नहीं है, भाई! मनुष्य मर जाता होगा फिर वे रोवे वहाँ खड़ा रहता होगा? अरे! बापू! परन्तु अभी नहीं मरा जाए। अभी चूरमा के लड्डू बनाये हैं। अभी हमने खाये नहीं।

मुमुक्षु : मर जाने के बाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ नहीं खाये जाते उस समय। उस समय तो फिर दबाकर रखो। शाम को नहीं खाये जाते। लड्डू नहीं खाये जाते। कौन जाने बाद में लड़के को कहे, खा लो, खा लो, जाओ।

मुमुक्षु : थोड़ा देरी से प्रसिद्ध करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : देरी से प्रसिद्ध करे। तब तक दबाकर रखे। क्या कहे ? मुर्दे को ढाँककर रखो। मुर्दे को ढाँककर रखो। अरे ! तुम्हें कलकलाहट नहीं आती कि आहाहा ! यह चीज़ जाती है और मैं भी कितने काल रहनेवाला हूँ ? यहाँ कहते हैं कि दुनिया हमारे लिये प्रतिकूलता के रव—शब्द निकाले। हमें उसका कुछ है नहीं। कहो, समझ में आया ?

क्योंकि जिस समय आपको वैराग्य हुआ था, उस समय आपने इस बेचारी पृथ्वी को सड़े तृण के समान छोड़ दिया था और आप इसके नाथ थे, इसलिए आपके द्वारा ऐसा अपमान पाकर.. पृथ्वी को अपमान लगा। स्वयं करते हैं... हम हमारे स्वभाव के साधन में आये हैं। हमें किसी पदार्थ में ममत्व हमारे नहीं हो सकता। हमारे सम्बन्ध नहीं हो सकता। **यह विलाप कर रही है और कोई भी कारण नहीं।** समझ में आया ? नदी की है और कुछ जहाज किया है अन्दर।

१७वीं।

गाथा १७

अब, वैराग्य होने के पश्चात् भगवान निश्चलध्यान में स्थित हैं, उस प्रसंग को लक्ष्य में लेकर मुनिराज स्तुति करते हैं।

अइ सोइओसि तइया काउस्सग्गटिठओ तुमं णाह।
धम्मिक्कघरारंभे उज्झीकय मूलखंभोव्व।।१७।।

अर्थ - हे भगवन्! हे प्रभो! जिस समय आप कायोत्सर्ग -सहित विराजामन थे,

उस समय धर्मरूपी घर के निर्माण में उन्नत मूल स्तम्भ के समान आप अत्यन्त शोभित होते थे।

भावार्थ - हे भगवन्! जिस समय आप कायोत्सर्गमुद्रा को धारण कर वन में खड़े थे; उस समय ऐसा मालूम होता था कि आप इस धर्मरूपी घर के स्थित रहने में प्रधान खम्भे ही हैं, अर्थात् जिस प्रकार मूल खम्भे के आधार से घर टिका रहता है, उसी प्रकार आपके द्वारा यह धर्म विद्यमान था।

गाथा - १७ पर प्रवचन

अइ सोइओसि तइया काउस्सग्गट्ठिओ तुमं णाह।
धम्मिक्कघरारंभे उज्झीकय मूलखंभोव्व।।१७।।

हे भगवान! अब कहाँ लिया? दीक्षा तो ली थी। अब भगवान ध्यान में खड़े हैं, वहाँ बात ली है। फिर (बात) उतारते-उतारते कायोत्सर्ग किया। यह अभी कायोत्सर्ग करते हैं... जाणेणं... वह नहीं। समझ में आया? ताहुकाय ठाणेणं... क्या ताहुकाय? अभी भान भी नहीं तुझे। काया क्या, वाणी क्या? मन क्या? कैसे उससे हटा जाए और राग भी छोड़ा छूटता नहीं, ऐसा मेरा सिद्ध स्वरूप है। ऐसे स्वभाव के भान बिना कायोत्सर्ग नहीं हो सकता।

हे **नाथ! जिस समय आप कायोत्सर्ग-सहित विराजमान थे,...** ध्यान में। चैतन्य की दृष्टि उसकी अवस्था की दृष्टि अन्तर में रखकर, अन्दर में झुकाकर गुम होते थे अन्दर। कायोत्सर्ग। काया और राग और कार्मण और तैजस और औदारिक तीनों का आपको लक्ष्य नहीं था। आप तो लक्ष्य के ध्येय में चैतन्य को पकड़कर ध्यान करते थे। तब **उस समय धर्मरूपी घर के निर्माण में उन्नत मूल स्तम्भ के समान आप अत्यन्त शोभित होते थे।** धर्म के स्तम्भ। प्रभु! आप (स्तम्भ समान हो)। बड़ा मकान होता है न? उसके बीच का स्तम्भ होता है न? इसी प्रकार आप धर्म के स्तम्भ जैसे दिखते थे। हरिभाई ने वहाँ डाला है। वह बाहुबलीजी का चित्र है न। जिस जिस जगह चाहिए, वहाँ डालना चाहिए न। यह तो कलाबाज है न। कहो, समझ में आया? क्या कहा?

पूरे घर में एक स्तम्भ होवे न मोढ ? यों भी तो यह खोटे होते हैं, उन्हें भी कहे स्तम्भ तो, हों ! नरभेरामभाई ! ऐसा भी कहते हैं, गधे की तरह सिर पर डण्डा पड़ता हो तो भी कहे। हम इस घर के स्तम्भ हैं। नहीं कहते वहाँ ? क्या कहा जाता है ? खळामां दाणा निकाले न ? खळामां दाणा। खळा समझते हो ? अनाज का... वहाँ ऐसी लकड़ी हो लकड़ी। उसके आधार से सब वह मण्डप टिका हो तो अनाज अन्दर पड़ा रहे। ऐसा शास्त्र में पाठ है। इसी प्रकार प्रभु ! आप ऐसा ध्यान करते थे। धर्म के स्तम्भ, धर्म के स्तम्भ आप थे। उस धर्म को टिकाने के लिये आप स्तम्भरूप प्रभु खड़े थे। देखो ! बाहुबलीजी। देखा है ? श्रवणबेलगोला। बाहुबलीजी की ५७ फीट की मूर्ति। उसका यह फोटो डाला है। इतना वैराग्य दिखता है, इतनी पुण्यता दिखती है। नरभेरामभाई ! बाबरा और कुण्डला के घर सब देखे हैं या नहीं ? दोनों गाँव के। और दामनगर।

श्रवणबेलगोला, वहाँ ऐसे भगवान बाहुबलीजी खड़े हैं। ओहोहो ! वह तो कोई अजायबी चीज़ ! ऐसे निरखकर मानो ऐसा हो जाए... आहाहा ! निर्विकल्प ध्यान के स्तम्भ, ऐसे चढ़े हैं अन्दर के ध्यान में। उनको बेल लिपट गयी हैं, खबर भी नहीं। खबर नहीं। ध्यान में मस्त हैं। समझ में आया ? ५७ फीट की बड़ी प्रतिमा है। ओहो ! दूर से कहीं से उनका मस्तक दिखाई देता है।

इसी प्रकार भगवान ऋषभदेव भगवान उनके पिता ध्यान में थे। प्रभु ! आप तो धर्म के स्तम्भ। ओहो ! चारित्र, वह धर्म है न ? यही यहाँ कहते हैं। जहाँ आपने चारित्र लिया और ध्यान में इस धर्म का स्तम्भ वहाँ हो गया। स्थिर होकर शीतल हिम हो गये, प्रभु ! ऐसे राग से हटकर स्वरूप की धारा बहे, छठे गुणस्थान में, आप विराजते हो विकल्प, जब उसे छोड़कर, स्थिर होकर ध्यान में मस्त हो, उस ध्यान की प्रशंसा करते हैं। समझ में आया ? छठे गुणस्थान में तो पंच महाव्रत का राग—प्रमाद का होता है। वह अच्छा होवे तो उसे छोड़कर धर्मस्थिरता क्यों करे ? वह यदि आत्मा का साधन होवे तो उसे छोड़कर स्थिरता क्यों करे ? चारित्र अन्दर में स्वस्वरूप में रमणता। समझ में आया ? 'कल्पवृक्ष सम संयम केरी जहाँ शीतल छाया।' वह चारित्र की दशा तो मनुष्यदेह में अन्तर की दृष्टि से स्वरूप में ऐसे स्थिर हो, उसे चारित्र कहते हैं। यह लोग वस्त्र छोड़े और वस्त्र बदले और कुछ नंगे पैर चले और गर्म पानी पिया और यह दीक्षा है। दीक्षा

नहीं दख्या है। समझ में आया? दख्या हुआ, दख्या बड़ा अधिक। अनन्त संसार बढ़ायेगा। आहाहा। बापू! तुझे चारित्र की खबर नहीं। चारित्र तो ऐसे शरीर, वाणी, मन से भिन्न दृष्टि हुई, पुण्य-पाप के राग से भिन्न हो गयी और चारित्र प्रगट हुआ स्वरूप की रमणता के आनन्द में। ऐसा चारित्र पुरुष बिना नहीं हो सकता। स्त्री को चारित्र कभी तीन काल तीन लोक में नहीं हो सकता। समझ में आया? ऐसी चारित्र की दशा पुरुष का देह हो वहाँ देहातीत होकर दृष्टि करके स्थिर होता है, उसे धर्म और चारित्र होता है। दूसरे को चारित्र नहीं होता।

कहते हैं, आप तो ऊँचे धर्म के स्तम्भ। ऊँचे ऐसा कहा वापस, हों! **उन्नत मूल स्तम्भ के समान आप अत्यन्त शोभित होते थे।** हे भगवान! जब आप कायोत्सर्ग मुद्रासहित वन में खड़े थे।... यह मेरे श्रावक और यह मेरे खेत और यह हमारी पुस्तकें और यह हमारे भण्डार और यह हमारी... वहाँ अभी तो श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं। अभी तो सच्चे देव-गुरु-शास्त्र किसे कहना? सच्चे देव किसे कहना? सच्चे गुरु चारित्रवन्त किसे कहना? सच्चे शास्त्र किसे कहना? इसकी जिसकी पहिचान की श्रद्धा नहीं और उसमें गड़बड़ उठावे, (वह) मिथ्यादृष्टि जीव है। उसे फिर त्याग कैसा और दीक्षा कैसी और चारित्र कैसा? कहो, समझ में आया? केवलचन्दभाई! सूक्ष्म बातें हैं, भाई! कहते हैं न, 'आनन्द कहे परमानन्दा माणसे-माणसे फेर; एक लाखे तो न मळे ने एक त्राम्बियाना तेर।' इस प्रकार बात-बात में सत्य और असत्य का बड़ा अन्तर है।

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा का कहा हुआ चारित्र, कहते हैं कि धर्म का स्तम्भ! ऐसे स्थिर हो गये हैं, वह विकल्प उठे, वह चारित्र नहीं है—ऐसा कहते हैं। पाँच महाव्रत —अहिंसा, सत्य, अचौर्य की वृत्ति उठे, वह चारित्र नहीं है। देह की नग्नता चारित्र नहीं है। ओहोहो! प्रभु! धर्म के स्तम्भ। कुन्दकुन्दाचार्य धर्म के स्तम्भ। जिन्होंने धर्म का स्तम्भ रोपा, कल्पवृक्ष इस भरतक्षेत्र में रोपा। इस चारित्र के प्रणेता हम खड़े। प्रवचनसार में दो अधिकार ज्ञान और ज्ञेय का अधिकार करके अथवा ज्ञान और दर्शन का... जहाँ चारित्र का वर्णन करते हैं कि चारित्रदशा क्या और चारित्र की भूमिका में कैसे विकल्पों की जाति होती है और शरीर की कैसी जाति नग्न आदि होती है, उसका वर्णन करते हुए पहले धर्म अर्थात् चारित्र के प्रणेता, चारित्र कैसा होता है, उसका निश्चय कैसा होता है,

उसका व्यवहार कैसा होता है, उसमें असद्भूतरूप से नग्नदशा भी कैसी होती है, उसके जाननेवाले प्रणेता कहनेवाले यह हम खड़े हैं। समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ आचार्य... आता है न? उत्तमचन्दभाई! प्रवचनसार में। एक बार उसकी पहिचान तो करे कि चारित्र कैसा होता है और सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र कैसा? और चारित्र के बिना यह मुनिपने का नाम धराना, वह सब भटकने के रास्ते हैं। चौरासी के अवतार में निगोद-नरक के साधक सब हैं। उसे आत्मा की चीज़ की खबर नहीं है।

कहते हैं, वन में ऐसे स्थिर हो गये। चैतन्य असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम। (उसमें) अन्दर गये, स्थिर हो गये। समझ में आया? 'जहाँ चैतन्य वहाँ सर्व गुण केवली बोले ऐम। त्यां आगळ प्रगट अनुभवो आत्मा निर्मल करो सप्रेम।' प्रेम की प्रीति, रुचि से अन्दर स्थिर हुए। विकल्प उठे दया का, पर को न मारूँ। नहीं, यह राग भी धर्म नहीं है। यह राग भी चारित्र नहीं है। पंच महाव्रत के भाव, वे चारित्र नहीं हैं। स्थिर हो गये, वह चारित्र है, ऐसा कहना चाहते हैं। चारित्र की पहिचान देकर अपने चारित्र में प्रसंग के स्वयं अपनी करते हैं। भगवान की प्रशंसा करते हैं।

आप इस धर्मरूपी घर के स्थित रहने में प्रधान खम्भे ही हैं,... लो! **जिस प्रकार मूल खम्भे के आधार से घर टिका रहता है, उसी प्रकार आपके द्वारा यह धर्म विद्यमान था।** आपने धर्म साधन किया और आपने ऐसी कथनशैली केवली में की। यहाँ तो अभी चारित्र तक की बात करते हैं।

गाथा १८

अब भगवान के केशों में भी अलंकार करके स्तुतिकार कहते हैं।

हिययत्थझाणसिहिओज्झमाण सहसा सरीरधूमो व्व।
सोहइ जिण तुह सीसे महुयरकुलसणिहकेसभरो।।१८।।

अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! भौंरों के समूह के समान काला जो आपके मस्तक पर बालों का समूह है, वह हृदय में स्थित जो ध्यानरूपी अग्नि, उससे शीघ्र जलाया हुआ जो शरीर, उसके धुएं के समान शोभित होता है - ऐसा मालूम पड़ता है।

भावार्थ - धुआँ भी काला है और भगवान के मस्तक पर विराजमान केशों का समूह भी काला है। इसलिए ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे प्रभो! यह जो आपके मस्तक पर बालों का समूह है, वह बालों का समूह नहीं है, किन्तु वैराग्य-संयुक्त आपके हृदय में जलती हुई जो ध्यानरूपी अग्नि, उससे जलाया हुआ जो आपका शरीर है, उसका यह धुआँ है।

गाथा - १८ पर प्रवचन

हिययत्थझाणसिहिओज्झमाण सहसा सरीरधूमो व्व।
सोहइ जिण तुह सीसे महुयरकुलसणिहकेसभरो।।१८।।

अब ध्यान के काल में वे बाल दिखते हैं न काले? उन बालों को देखकर भगवान से कहते हैं, हे नाथ! वे बाल नहीं, हों! आपको निर्जरा होती है, वह हमें ज्ञात होती है, ऐसा कहते हैं, भाई! आपके कर्म जलते हैं, यह हमें खबर पड़ती है। इस प्रकार दर्शनपूर्वक जहाँ स्थिरता हुई है, वहाँ कर्म का चूरा उड़ता है और कर्म सुलगे उसमें से धुआँ उठा, वह यह धुआँ आकर दिखता है। समझ में आया?

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! भौरों के समूह के समान काला जो आपके मस्तक पर बालों का समूह है, वह हृदय में स्थित जो ध्यानरूपी अग्नि,... आनन्दकन्द को ध्येय में पकड़कर स्थिर हो गये हो, वह **अग्नि, उससे शीघ्र जलाया हुआ जो शरीर, उसके धुएँ के समान शोभित होता है-ऐसा मालूम पड़ता है।** यह कार्मणशरीर के रजकण धुआँ उठता है, कहते हैं। जलकर राख होती है। ओहोहो! वापस कहा कि कैसा ध्यान कर्म को जलाता है। यह णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... करे, लो! बहुत अच्छा ध्यान। क्या धूल का ध्यान था? णमो अरिहंताणं, वह तो शुभराग है। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। निर्जरा-बिर्जरा वहाँ नहीं है। ऐई! नरभेरामभाई! यह क्या कहना, इसकी आवाज नहीं निकलती, लो!

ओहोहो! माला जपते हैं। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... देह छूट गयी। ओहोहो! समाधिमरण। तुझे क्या खबर पड़े समाधिमरण का क्या स्वरूप

होगा ? यह तो अभव्य को भी ऐसा (होता है)। जिसे एक भव घटता नहीं, ऐसा अभव्य भी भगवान का स्मरण (करता है), णमो अरिहंताणं। शुभभाव है। देह छूटे। जाये स्वर्ग पुण्यादि हो तो। चार गति में भटके। उसे ध्यान नहीं कहते। उसे धर्मध्यान और चारित्र नहीं कहते। चारित्र में ध्यान कैसा होता है ? एकाग्र होने से कर्म के रजकण जल जाते हैं। जलते हैं अर्थात् पर्याय बदलती है। और मानो धुआँ होकर सिर में दिखता नजर पड़ता है कि प्रभु! अन्दर आपकी ध्यानाग्नि सुलग रही है। ओहोहो! खबर पड़ती होगी ? यहाँ तो कहे, खबर नहीं पड़ती, भाई! अपने को कुछ खबर नहीं पड़ती। अपने को कितनी निर्जरा होती है, कितनी शुद्धि होती है। यह तो पर के लिये बात करते हैं।

प्रभु ध्यान में बैठे हैं। काले बाल दिखते हैं। तीर्थंकर के शरीर में तो कभी वृद्धावस्था आती ही नहीं। उनके बाल सफेद नहीं होते, वृद्धावस्था नहीं होती, चमड़ी... नहीं पड़ती। कुँवरजीभाई! उनका शरीर शिथिल नहीं पड़ता। यह कहते हैं कि पहिचान करे, श्रद्धा-ज्ञान करे तो ऐसा शरीर और राग रह गया, उसमें से आवे। उसके लिये बात होती है ? इस प्रकार भगवान वृद्धावस्था जैसे दिखें अर्थात् उम्र बड़ी हो तो भी उनमें वृद्धावस्था नहीं दिखती। यही कहते हैं कि काले बाल। लो, कितने समय में ... की दीक्षा है ? ८३ लाख पूर्व। ८४ लाख पूर्व का एक भाग रह गया। एक लाख पूर्व। ८३ लाख (पूर्व)। इतना भाग गया। जैसे ८४ वर्ष का आयुष्य हो और ८३ वर्ष में बाहर निकले तो कितना भाग रह गया ? इसी प्रकार ८३ लाख पूर्व गये। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़। ऐसे-ऐसे ८३ लाख पूर्व रहे। कितने लड़के के लड़के और कितनी रानियाँ, कितना... कहते हैं कि प्रभु! आपके बात तो काले थे, हों! ऐसा कहकर शरीर में वृद्धावस्था भी नहीं थी, (ऐसा कहते हैं)। ओहोहो! कुँवरजीभाई! यह ८४ वर्ष का आयुष्य हो न, तो ८३ वर्ष में संसार छोड़े तो एक वर्ष बाकी हो तो भी काले के काले बाल रहें। नेमिदासभाई! यहाँ तो सफेद हो गये हैं यहाँ सब। यहाँ सफेद हो गये हैं। यह भगवान ८३ लाख पूर्व में निकले, शरीर तो मानो युवक हो और काले बाल ऐसे भ्रमर की तरह चक्कर मारकर पड़े हों। प्रभु! हमें तो ऐसा दिखता है न! आप राग के विकल्प से छूटकर निर्विकल्प ध्यान में स्थित हुए, उस कर्म का धुआँ हो गया और मस्तक पर दिखता है। समझ में आया ?

(संवत्) १९७६ में एक बात हुई थी न, कही थी न एक बार? धांग्रध्रा में न, मगनभाई। छोटाभाई! वे मगनभाई नहीं थे? मगनभाई और वजुभाई दो। दशाश्रीमाली। १९७६ में पहले-पहले गये।

मुमुक्षु : .... के भाई?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भूराभाई के बापू मगनभाई।

७६ के वर्ष। पहले-पहले वीरमगाम से वहाँ गये। वहाँ सब लोग सामने आये। प्रेम तो (था न)। सब नाम तो सुना हुआ था न। ७६ की बात है। कितने वर्ष हुए? ४०। ४० हुए? नहीं ४२। ४०-४० बराबर है। २४ और १६=४०। सब सामने आये। मगनभाई कहे, महाराज! जंगल में एक नदी थी, उसके किनारे एक देहरी थी। ढक्कनवाली। ऐसे देहरी खुल्ली और ऊपर ढक्कन और चार स्तम्भ। यहाँ महाराज रहना है? यह अभी गाँव में जिन्दगी में (पहली बार) आये और यह क्या बोलता है? होगा कुछ, कहा। गाँव में गये फिर बात। यहाँ रहना है? महाराज! गाँव में गये। एक आये। कहे, महाराज! मैंने तो आपको जिन्दगी में देखा नहीं परन्तु रात्रि में स्वप्न में आये थे और आपको एक लंगोटी देखी और शरीर ऐसा देखा था, लो! वे तो ऐसा बोले थे, मैंने साधु देखे। वह तो लंगोटी को साधु कहते थे न और इस प्रकार से नग्न साधु... ७६ की बात है। देखे। और मैं फिर ऐसे ध्यान करता था अन्दर विचार (करता था), वहाँ वे परमाणु मुझे दिखते थे अन्दर हटे वे। सफेद खिरने लगे। यह कैसे होगा? कहा, ऐसा नहीं दिखता, भाई! परन्तु विचार में लोग विचार करे, एकाग्र हो। वह करे। वाँचन-बाँचन सही। तत्त्व की तो बात थी कहाँ? शुभभाव में संवर और सब बातें चलती थी।

अन्दर ऐसा करते हुए यहाँ से मानो सफेद परमाणु खिर जाते हैं। ऐसा प्रश्न किया। नरभेरामभाई! परन्तु ऐसा समय लिया हो, उसे खबर पड़े न? कहा, भाई! वे परमाणु खिरे, वे नजर से नहीं दिखते। कार्मण के परमाणु बहुत सूक्ष्म हैं। वे नजर से नहीं दिखते। यहाँ तो कहते हैं कि हम देखते हैं, आपके ध्यान में कर्म को जले हुए, धुएँरूप से निकले, जल गये हैं, उन्हें देखते हैं। ओहोहो! यह निर्जरा हो और शुद्धि बढ़े, उसकी खबर पड़ती है या नहीं - ऐसा कहते हैं। धन्नालालजी! समझ में आया? आहाहा!

भावलिंगी सन्त जो धर्म के स्तम्भ, उन भगवान की ऐसी स्तुति करते हुए आह्लाद में भगवान को मानो निकट में खड़े हों, (ऐसा देखकर कहते हैं), प्रभु! आप तो ध्यान करते हो न, देखो! यह ध्यान है। ले, परन्तु वह तो कहीं मोक्ष में पधारे हैं। वे तो मोक्ष में पधारे हैं। भले पधारे परन्तु किस स्थिति से पधारे, उसका हम स्मरण करते हैं, उसका हम ज्ञान करते हैं और देह की क्रिया से कर्म खिरते नहीं, ऐसा कहते हैं। दया, दान, व्रत, तप के भाव का विकल्प, वह राग कहलाता है। उससे कर्म-बर्म खिरते नहीं और सम्यग्दर्शन बिना, चारित्र बिना भी कर्म नहीं खिरते।

कहते हैं, प्रभु! यह ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे प्रभु! आपके मस्तक के ऊपर जो यह बालों का समूह है, वह बालों का समूह नहीं, हों! ले। बाल है, वे बाल नहीं। परन्तु वैराग्य संयुक्त आपके हृदय में जो जलहलते ध्यानरूपी अग्नि द्वारा। जलहलती अग्नि एकाग्र हुई। ज्वाजल्यमान अग्नि, जलहलती अग्नि। भाषा होती है न सब? कलकलाहट वाले परिणाम। वह कलकलाहट का आया था, हों! कलकलाहट का। १७२ में आता है। यह भाषा है न सब? सराबोर हलुवा और कलकलता पानी, है न ऐसी भाषा या नहीं?

यहाँ कहते हैं कि ऐसे जलहलते ध्यानरूपी अग्नि द्वारा भस्म किया गया जो आपका कार्मणशरीर उसे वह ... है। प्रभु! आप अशरीरी होनेवाले हैं। उस अशरीरी का साधन करते हो, वह कार्मण शरीर जलता जाता है, जल जाता है। यह नये कार्मणशरीर का कारण है। शरीर-बरीर आपको भविष्य में रहनेवाला नहीं है। कार्मण सुलगने लगा है।

गाथा १९

अब, ध्यान करते-करते भगवान को केवलज्ञान होता है, उसकी बात को लक्ष्य में रखकर स्तुति करते हैं -

कम्मकलंकचउक्के णट्ठेणिम्मलसमाहि भूईए।
तुहणाणदप्पणेच्चिय लोयालोयं पडिप्फलियं।।१९।।

अर्थ - हे जिनेश! हे प्रभो! निर्मल समाधि के प्रभाव से चार घातिया कर्मों के

नष्ट होने पर, आपके सम्यग्ज्ञानरूपी दर्पण में यह लोक तथा अलोक प्रतिबिम्बित हुआ।

भावार्थ - जब तक इस आत्मा में अखण्डज्ञान (केवलज्ञान) की प्रगटता नहीं होती, तब तक यह आत्मा, लोक तथा अलोक के पदार्थों को नहीं जान सकता, किन्तु जिस समय उस केवलज्ञान की प्रगटता हो जाती है, उस समय यह लोकालोक के पदार्थों को जानने लग जाता है। उस सम्यग्ज्ञान की प्रगटता तेरहवें गुणस्थान में, जबकि प्रकृष्ट ध्यान में चार घातियाकर्मों का नाश हो जाता है, तब होती है। इसी आशय को लेकर ग्रन्थकार स्तुति करते हैं कि हे प्रभु! आपने समस्त प्रकृष्ट ध्यान से चार घातियाकर्मों का नाश कर दिया है; इसीलिए आप समस्त लोकालोक को भलीभाँति जाननेवाले हुए हैं।

गाथा - १९ पर प्रवचन

कम्मकलंकचउक्के णट्ठेणि मलसमाहि भूईए।
तुहणाणदप्पणेच्चिय लोयालोयं पडिप्फलियं।।१९।।

आहाहा! अब ध्यान का फल केवलज्ञान लाये। सर्वार्थसिद्धि से शुरु किया है। पूरा जीवन ख्याल में तैरता है। हे **जिनेश!** हे प्रभु! **निर्मल समाधि के प्रभाव से...** देखो! यह प्रभाव कहा। कोई पंच महाव्रत के विकल्प द्वारा या नग्नदशा द्वारा या अपवास की क्रिया द्वारा वे कर्म खिरे नहीं हैं। परन्तु **निर्मल समाधि के प्रभाव से चार घातिया कर्मों के नष्ट होने पर,...** भगवान को पहिचाना। यह भगवान को पहिचाना। प्रभु! ऐसे चार कर्म नाश हुए, उनकी यह तेरी वाणी है। हम वाणी को पहिचानते हैं और आपको भी पहिचानते हैं। कहो, समझ में आया?

चार घातिया कर्मों के... देखो! अस्तिता स्थापित की है। आपने कर्म का नाश किया है, (नाश) **होने पर, आपके सम्यग्ज्ञानरूपी दर्पण में...** लो! दर्पण आया, भाई! **यह लोक तथा अलोक प्रतिबिम्बित हुआ।** ऐसा प्रभु केवलज्ञान, आत्मा की समाधि, शान्ति में स्थिर होने से पुण्य-पाप के महाव्रत और अव्रत के रागरहित होकर,

स्वभाव में स्थिर होने से, उसके प्रभाव से चार घातिकर्म का नाश हुआ, केवलज्ञान ऐसा प्रगट हुआ कि ऐसे दर्पण में जैसे वस्तु सामने दिखती है, वैसे आपके चैतन्य दर्पण में लोकालोक प्रतिबिम्बित होता है। लो, ऐसा केवलज्ञान होता है - यह सिद्ध करते हैं। अभी दृष्टान्त दिया था न, भाई ने—फूलचन्दजी ने। अपने शक्ति में भी आयेगा, हों! समझ में आया?

लोक तथा अलोक प्रतिबिम्बित हुआ। भगवान के ज्ञान कोई बाकी नहीं रहा, ऐसा कहते हैं। एक समय में तीन काल और तीन लोक भूत, भविष्य और वर्तमान, ऊर्ध्व, मध्य और अधो तथा खाली अलोक। अनन्त द्रव्य, अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल, अनन्त भाव, अनन्त भव जगत के। आपके ज्ञान में सब आ गये। आपके ज्ञान में नोंध है, तीन काल तीन लोक की (नोंध है)। ओहोहो! समझ में आया? **जब तक इस आत्मा में अखण्डज्ञान (केवलज्ञान) की प्रगटता नहीं होती, तब तक यह आत्मा, लोक तथा अलोक के पदार्थों को नहीं जान सकता,...** एक बात यह की। **किन्तु जिस समय उस केवलज्ञान की प्रगटता हो जाती है, उस समय यह लोकालोक के पदार्थों को जानने लग जाता है।** लो! यह लोग अभी चिल्लाहट मचाते हैं। नहीं, भगवान नहीं जानते। भगवान पर को नहीं जानते, भगवान तो स्व को जानते हैं।

सवेरे आया न कि आत्मदर्शनमय... अभी बाकी है। सब जानना या देखना, वह तो आत्मदर्शनमय और आत्मज्ञानमय शक्ति का विकास उसमें है। पर के कारण उसमें कहाँ है? वह अपना स्वभाव, सर्वज्ञशक्ति से भरपूर है। उसकी जो प्रतीति और श्रद्धा हुई है, भान हुआ, उसमें स्थिर हुए, चार घनघाति (कर्म का) नाश हुआ। केवलज्ञान हुआ। लोकालोक, दर्पण में जैसे ज्ञात होता है, वैसे ज्ञात होता है। देखो! यह अरिहन्त पद की और केवलज्ञान की पहिचान। यहाँ तो अभी (ऐसा कहे), उसमें ज्ञात नहीं होता। भगवान ने यदि सब जाना होवे तो मेरी अन्तिम पर्याय कौन सी, यह भगवान कह दे। कहो, मेरी अन्तिम पर्याय। ऐ... परन्तु अन्तिम पर्याय (होवे) तो फिर द्रव्य भी नहीं रहा। आहाहा! और वापस यह सब त्यागी नाम धरानेवाले। यदि भगवान ने तीन काल जाने हों तो भूतकाल की मेरी पहली पर्याय कौन सी थी, ऐसा बतला दे। नहीं-नहीं। सामान्य जाना है, सब भिन्न-भिन्न करके नहीं जाना, (ऐसा वे कहते हैं)।

यहाँ कहते हैं कि भिन्न-भिन्न करके तीन काल-तीन लोक जाने बिना रहे नहीं। तीन काल जाने तो तीन काल का अन्त आ गया ज्ञान में, तो वहाँ भी अन्त आ जाता है, ऐसा नहीं है। तीन काल तीन लोक ख्याल में आये हैं। दर्पण में जैसे दूसरी चीज़ें ज्ञात होती हैं। दर्पण जड़ है। दर्पण जड़ है, उसे ख्याल नहीं कि मुझमें कौन प्रतिबिम्बित होता है? चैतन्य दर्पण? ज्ञायक ज्योति है। आत्मा का पुण्य-पाप के राग से हटकर स्वरूप का ध्यान किया, तब केवलज्ञान हुआ, उसमें लोकालोक के पदार्थ प्रतिभासित होते हैं। कोई बाकी नहीं रहते। कहो, समझ में आया?

प्रभु! जिस समय उस केवलज्ञान की प्रगटता हो जाती है, उस समय यह लोकालोक के पदार्थों को जानने लग जाता है। उस सम्यग्ज्ञान की प्रगटता तेरहवें गुणस्थान में, जबकि प्रकृष्ट ध्यान में चार घातियाकर्मों का नाश हो जाता है, तब होती है। लो! तेरहवें गुणस्थान में। गुणस्थान तेरहवाँ। तब और कितने गुणस्थान होंगे? यह तो अंक तो आता होगा। इसमें कुछ पूछने का नहीं होता। ऐसा पूछकर क्या करे यह तो? खोज हो। उसका क्या है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तो ठीक पड़े। सौ में से सौ नम्बर मिलें। वह एक भी नम्बर मिलता नहीं।

इसमें कहते हैं कि भगवान! आपको तेरहवीं भूमिका—आत्मा की दशा प्रगट हुई। चौथी भूमिका सम्यग्दर्शन लेकर आये थे, मुनि हुए तो छठवाँ-सातवाँ, केवल (ज्ञान) हुआ, तब तेरहवाँ। सब गुणस्थान की दशा कैसी होती है, वह भी इसके ख्याल में आ गयी है। उस समय प्रभु! आपको सम्यग्ज्ञान की ज्योति प्रगट हुई। सम्यग्ज्ञान तो पहले से था परन्तु पूर्ण प्रगट हुआ। कोई चीज़ जाने बिना रही नहीं। उस ध्यान द्वारा घातिया कर्म का नाश होने पर आप समस्त लोकालोक के भलीभाँति ज्ञाता हुए। गुजराती है न इसमें। लोकालोक के सब भलीभाँति। भलीभाँति। कोई बाकी रहा नहीं। ऐसा केवलज्ञान, ऐसा सर्वज्ञपद प्रभु आपको प्रगट हुआ। कोड़ाकोड़ी सागरोपम हुए परन्तु हमें विश्वास है कि आप केवलज्ञानी थे। कहो, समझ में आया?

गाथा २०

आवरणाईणि तए समूलमुम्मूलियाइ दट्ठूण।
कम्मचउक्केण मुअं व णाह भीऐण सेसेण॥२०॥

अर्थ - हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जिस समय आपने ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों का जड़सहित अर्थात् सर्वथा नाश कर दिया था; उस समय उन सर्वथा नष्ट ज्ञानावरणादि कर्मों को देखकर शेष जो चार अघातियाकर्म रहे, वे भय से आपकी आत्मा में मरे हुए के समान रह गये।

भावार्थ - जिस समय ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय - इन चार घातियाकर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है; उस समय शेष वेदनीय, आयु, नाम तथा गोत्र - ये चार अघातियाकर्म बलहीन रह जाते हैं। इसी आशय को मन में रखकर ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे भगवान! जो अघातियाकर्म आपकी आत्मा में मृतक के समान अशक्त होकर पड़े रहे, उनकी अशक्तता का कारण यह है कि जब आपने अत्यन्त प्रबल चार घातियाकर्मों को नाश कर दिया, उस समय उनको बड़ा भारी भय हुआ कि हम भी अब निर्मूल किये जाएँगे; इसीलिए वे मरे हुए के समान अशक्त ही आपकी आत्मा में स्थित रहे।

गाथा - २० पर प्रवचन

आवरणाईणि तए समूलमुम्मूलियाइ दट्ठूण।
कम्मचउक्केण मुअं व णाह भीऐण सेसेण।।२०।।

आहाहा! देखो न! अब क्या बात ली है? प्रभु! आपको चार कर्म का नाश हुआ। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल, अनन्त वीर्य प्रगट हुआ। अब चार कर्म जो बाकी रहे न, (वे) जली हुई रस्सीवत् मरे हुए पड़े हैं। कहते हैं न? विवाद उठाते हैं न दोनों में? नहीं, चार घातिकर्म जली हुई डोरीवत् नहीं होते। होवे तो इतने अटके हैं। जली डोरीवत् नहीं कहलाते। ऐसे उस सम्प्रदाय में कहा जाता है। ऐसा नहीं है। श्रीमद् में

आता है न अपूर्व अवसर में। चार अघाति कर्म जली डोरीवत्। जली हुई डोरी अर्थात्, जली डोरी समझते हो? ... आकारमात्र पड़ा है। योग्यता स्वयं की है, इसलिए स्वयं रहे हैं और कर्म तो मुर्दे जैसे रहे, मुर्दे जैसे रहे, ऐसी भी साथ में बात (करते हैं)।

हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! जिस समय आपने ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों का मूल मे से अर्थात् सर्वथा नाश कर दिया था;... मूल में से निकल डाले। **उस समय उन सर्वथा नष्ट ज्ञानावरणादि कर्मों को देखकर शेष जो चार अघातियाकर्म रहे, वे भय से आपकी आत्मा में मरे हुए के समान रह गये।** आहाहा! किस शैली से बात करते हैं! नाश हुए या हुए, मरे हुए पड़े हैं अब। अघाति तो मुर्दे। और अभी सम्प्रदाय में ऐसा भी कहे, भगवान चार अघाति कर्म के कारण रहे हैं। पूर्व में उन्होंने योग सेवन किया था, उससे कर्म बँधे, उन कर्म के फलरूप से उन्हें रहना पड़ता है। ऐसा नहीं है। उनकी योग्यता इतनी है। चार कर्म जले हुए मुर्दे जैसे पड़े हैं। मर गया, वह अब खड़ा होनेवाला नहीं है। उसे जोर देते हैं। चार अघाति का जोर। देखो! उसमें वेदनीय के कारण ऐसा होता है, आयुष्य के कारण इतना रहना पड़ता है, अमुक के गोत्र के कारण ऐसा होता है, नाम कर्म के कारण... यहाँ तो आचार्य प्रभु कहते हैं कि वे तो जले हुए हैं। मर गये हुए देखता हूँ। चार कर्म का नाश किया, इसलिए बाकी रहे हुए वे मुर्दा हैं।

जिस समय ज्ञानावरणादि चार... नाम है न ...चार? **चार कर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है;...** सर्वथा, हों! थोड़ा (भी) बाकी नहीं। **उस समय वेदनीय, आयु, नाम तथा गोत्र – ये चार अघातियाकर्म बलहीन रह जाते हैं।** हीन हो जाए। **इसी आशय को मन में रखकर ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे भगवान! जो अघातियाकर्म आपकी आत्मा में मृतक के समान अशक्त होकर पड़े रहे, उनकी अशक्तता का कारण यह है कि जब आपने अत्यन्त प्रबल चार घातियाकर्मों को नाश कर दिया,...** जोरदार थे। घनघाति कहते हैं न उन्हें? आत्मा को कुछ घात करते होंगे या नहीं? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कहीं घात करे, यह तीन काल में नहीं होता। यह तो निमित्त के कथन हैं। आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन, वीर्य और आनन्द की दशा की हीनरूप परिणमन हो, तब उन चार कर्म अघाति को निमित्तरूप से घनघाति जलने के बाद बाकी रह गये। उन घातियाकर्मों को भी नाश कर डाला। **उस समय घातियाकर्मों को बड़ा भारी भय**

हुआ... लो! **कि हम भी अब निर्मूल किये जाएँगे; इसीलिए वे मरे हुए के समान अशक्त ही आपकी आत्मा में स्थित रहे।** समझ में आया?

श्रीमद् ने कहा है न उसमें? 'देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान जो, इससे प्रक्षीण चारित्रमोह विलोकिये।' समझ में आया? आत्मा राग और पुण्य के भाव से भिन्न भान में आया, इसी प्रकार प्रक्षीण स्वरूप की एकाग्रता करते हुए चारित्रमोह को प्रक्षीणरूप से नाश होते देखते हैं। इसलिए भी, हों! स्वभाव के साधन द्वारा चारित्रमोह भी प्रक्षीण होता देखते हैं। भगवान को कहते हैं, प्रभु! आपके चार घातिकर्म नाश हुए, अघाति को हम मुर्दे जैसे देखते हैं। इसमें बड़ा विवाद। कोई कहता है कि ऐसा है और कहे ऐसा है। अरे! भगवान! सुन तो सही। इन अघातिकर्मों का समय-समय में जो उदय आता है न? उसे तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि क्षायिक कहते हैं। क्षायिक ही कहते हैं। क्षण-क्षण में निर्मलता बढ़ती जाती है। पड़े हैं, वे तो मुर्दे जैसे हैं। वे कहीं खड़े होकर आत्मा को-आनन्द को नुकसान करे, ज्ञान को (नुकसान करे), ऐसा कुछ है नहीं। मोह था, तब तक अघाति को निमित्तरूप से कहा जाता था। मोह टलने के बाद उनका कोई सामर्थ्य रहा नहीं। ऐसा कहकर चार अघाति बाकी रहे, उनके लक्ष्य को अनुलक्ष्य करके भी भगवान की स्तुति (की है)। और स्वरूप ऐसा होता है तथा उनके भक्त भक्ति करनेवाले इस प्रकार से श्रद्धा-ज्ञान करते हैं, और उन्हें बहुमान आता है, ऐसा वर्णन कर रहे हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)